पुरुष वर्चस्व पर प्रश्नचिन्हः 'नेपथ्य राग'

डॉ. सुषमा सहरावत,

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,
कमला नेहरू कॉलेज,
दिल्ली विश्वविद्यालय

शोध सारांश

'नेपथ्य राग' नाटक स्त्री की प्रतिभा को नेपथ्य से समाज रूपी रंगमंच पर लाने की दिशा में सार्थक प्रयास है। मीराकांत ने इस नाटक में स्त्री जाति के प्रति अपनाई जाने वाली पक्षपातपूर्ण नीति, संकीर्ण दृष्टिकोण , जड़ मानसिकता और शोषक–वृत्ति का ही विरोध नहीं किया है अपितु यह भी सिद्ध किया है कि प्रतिभा एवं विद्वता मात्र पुरूषों की ही बपौती नहीं है। स्त्री की योग्यता का दोहन कर पुरूष समाज द्वारा स्थापित वर्चस्ववाद निरर्थक है।

मीराकांत स्त्री–संवेदना की सशक्त अभिव्यक्ति करने वाली लेखिका हैं। ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को आधार बनाकर वर्तमान जीवन की स्थितियों की पड़ताल कर वह चिंतन–मनन के द्वार खोलने का प्रयास करती हैं। इसी कड़ी में वर्ष 2004 में प्रकाशित उनका प्रसिद्ध नाटक नेपथ्य राग है। इसमें खना नामक स्त्री–कथा के माध्यम से लेखिका ने प्रतिभावान संघर्षशील स्त्री के जीवन की पीड़ा को स्वर दिया है।

कथावाचन शैली में समकालीन परिवेश से प्रारम्भ हुए इस नाटक की मुख्य कथा है–चौथी–पाँचवीं शताब्दी के उज्जैन गणराज्य की प्रतिभाशाली युवती खना का आधार लेकर संघर्षशील स्त्री की व्यथा प्रस्तुत करना। उज्जयिनी के सम्वेदनशील राजा मालवगणनायक चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के नवरत्नों में से एक प्रख्यात ज्योतिषाचार्य वराह मिहिर खना की विलक्षण बुद्धि के कारण उसे अपनी शिष्या बनाते हैं। वराह मिहिर का प्रतिभावान पुत्र पृथुयसश विदुषी खना के प्रति आसक्त हो कर उसे अपनी पत्नी बना लेता है। खना के पांडित्य, विद्वता एवं ज्ञान का यश जब राजा तक पहुँचता है तो वे खना को अपना सभासद नियुक्त करना चाहते हैं किन्तु आत्महीनता के भय से ग्रस्त पुरूष सभासदों की संकीर्ण मानसिकता ऐसा नहीं होने देना चाहती। इस सारे षड्यंत्र के दौरान खना के श्वसुर आचार्य वराह मिहिर का तटस्थता बनाये रखना उनकी सहभागिता को ही दर्शाता है। एक स्त्री को भविष्यवक्ता के रूप में राजसभा में सम्मान देना पितृसत्तात्मक समाज को स्वीकार न हुआ। अंततः पुरूष सभासद खना को राजसभा में सभासद के रूप में स्वीकृति तो प्रदान करते हैं किंतु जिह्वाविहीन रूप में। माँ कारण स्पष्ट करते हुए मेधा को बताती है कि, ''उसके ज्ञान ...उसकी प्रसिद्धि को वे लोग कहाँ पचा पाये जो हमेशा से उस दुनिया को हथियाये बैठे थे।'' खना की जिह्वा काटने जैसा निंदनीय कार्य पुरूष समाज की जड़ व क्षुद्र मानसिकता को उजागर करता है। स्त्री पुरूष को सहज स्वीकार्य तो है किंतु केवल भोग्या और सेविका के रूप में। विचारशून्य स्त्री ही पुरूष को स्वीकार्य है। जहाँ स्त्री ने अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व की पहचान स्थापित करने का

प्रयास किया वहीं पुरूषसत्ता का दमनकारी रूप उभर आता है।

खना का जिह्वाविहीन रूप में स्वीकार पितृसत्तात्मक समाज द्वारा स्त्री के विदुषी रूप के अस्वीकार को प्रत्यक्ष करता है। चौथी–पाँचवी शताब्दी की खना हो या इक्कीसवीं शती की मेधा, युगान्तर से स्त्री अपने विदुषी होने के कारण मानसिक–शारीरिक प्रताड़ना सहती आई है। समानाधिकार की बातें करने वाला यह पुरूष समाज स्त्री की वैचारिक क्षमता तक को अपने अधीन कर लेना चाहता है। पुरूष वर्चस्ववाद के मिथ्या दम्भ से आक्रांत यह समाज तब भी स्त्री की विद्वता को समाज रूपी रंगमंच के नेपथ्य में रखना चाहता था और आज भी उस स्थिति में परिवर्तन नहीं आया है। वैचारिक अभिव्यक्ति की शक्ति से रहित स्त्री ही इस पुरूष सत्तात्मक समाज को प्रिय है। जैसे ही स्त्री अपनी विलक्षण प्रतिभा के बल पर प्रगति–पथ पर अग्रसर होती है, वैसे ही आत्महीनता के भय से त्रस्त यह समाज उसका मार्ग अवरुद्ध करने की चेष्टा करने में लग जाता है। नाटक के अन्त में खना का जिह्वाविहीन होना संकीर्ण पुरूष मानसिकता का ही तो सूचक है जो एक स्त्री की विलक्षण प्रतिभा के सम्मुख स्वयं को हीन समझते हैं। स्त्री जाति अपनी प्रतिभा के बल पर कहीं पुरूषों का वर्चस्व पद न छीन ले–इसी क्षुद्र मनोवृति के चलते वे खना जैसी प्रतिभावान स्त्रियों को आगे बढ़ने से पहले ही रोक देना चाहते हैं। खना स्वयं यह जानती है कि इस जड़ समाज में स्त्री–स्वातंत्र्य, स्त्री–अस्मिता की स्वीकृति में कई युग लग जाएंगे –

''खनाः (करुणामयी मुस्कान के साथ स्वगत) स्त्री सभासद–पिताश्री, आप तो व्यर्थ ही चिंतित हैं। श्रावण क्या यह तो आषाढ़ से भी पहले के मेघ हैं। बरसेंगे नहीं। आषाढ़ अभी नहीं आया – नहीं आया–आषाढ़ आने में कई संवत्सर बीत जाएंगे। – कई युग–यह नेपथ्य है–इसे मंच तक पहुँचने में समय लगेगा–कल्पान्त–कई युग।''

वस्तुतः सभ्य तथा प्रगतिशील कहे जाने वाले समाज में स्त्री का वैचारिक कौशल आज भी पुरूष सत्ता को सहज स्वीकार्य नहीं है। समय और काल भले ही बदल गये हों किंतु स्त्री नेतृत्व को सहज ग्राह्य न कर पाने का पुरूष दृष्टिकोण आज भी वही है। दृश्य एक में मेधा और माँ का वार्तालाप स्पष्ट संकेत करता है कि पुरूष वर्चस्व का बोझ स्त्री पीढ़ी–दर–पीढ़ी सहती आ रही है –

''**माँ** : ऐसे परेशान होने से ...मेरा मतलब...तुम समझने की कोशिश करो...ऑफिस में तो ये सब चलता ही रहता है।

मेधा : तुम मेरी प्रोब्लम को जनेरेलाइज़ कर रही हो...मेरा ऑफिस...

माँ : क्यों? तुम्हारे ऑफिस में क्या खास बात है? तुम क्या इसे आज के ज़माने की कोई नयी प्रोब्लम समझ रही हो? तुम्हारे ही शब्दों में... क्या है वो...पोस्ट मॉडर्न प्रोब्लम!''

वार्तालाप से स्पष्ट है कि पुरूष सहकर्मियों का असहयोग मेधा जैसी आधुनिक युवती की ही समस्या नहीं है वरन् इसका दंश तो पुरातन काल से स्त्री जाति सह रही है। डॉ. ममता धवन के शब्दों में, ''सामंतवाद, पूँजीवाद, पुरूषवाद, लिंगवाद ने स्त्री की इच्छाओं की किस प्रकार किलेबंदी की है और स्त्री–प्रगति के मार्ग को किस प्रकार अवरुद्ध किया है इसकी निश्चित रूपरेखा को समझाने का प्रयत्न मीराकांत दो युगों के गहरे अंतरालों के बीच स्त्री की स्थिति की नियति को स्पष्ट करते हुए करती हैं।'' सच तो यह है कि आर्थिक दृष्टि से भले ही आज स्त्री पहले के मुकाबले अधिक स्वावलम्बी हुई है किंतु पुरूष वर्चस्ववाद का दानव आज भी विविध रूप बदल कर उसे भयाक्रांत किए रहता है। दादी, माँ और पोती तीनों पीढ़ियों का खना की कथा से

अवगत होना दर्शाता है कि शताब्दियाँ भले ही बदल गईं हों परंतु स्त्री को अपने वर्चस्व के अधीन रखने की पुरूष मानसिकता अपनी सुविधानुसार थोड़े–बहुत स्वरूप परिवर्तन के साथ आज भी वही है। जयदेव तनेजा जी के शब्दों में – ''मीराकांत नारी विमर्श की गंभीर एवं संवेदनशील नाटककार हैं। इनकी सोच का केंद्रीय बिंदु यह है कि देश–काल चाहे कोई भी हो , बुद्धिमती विदुषी स्त्री को पुरूष समाज कभी बर्दाश्त नहीं कर पाता। आज के आक्रामक स्त्री विमर्श/व्यवहार और स्वछंदतावादी आधुनिकता के बावजूद बुनियादी स्थिति कोई मूलभूत अन्तर नहीं आया है। हाँ, समयानुसार पुरूष द्वारा स्त्री को अपने हक़ में इस्तेमाल करने के तरीके और तेवर ज़रूर कुछ बदल गए हैं।'' पुरातनकालीन कटु यथार्थ आज इक्कीसवीं शती में भी समकालीन यथार्थ बनकर हमारे बीच उपस्थित है।

वस्तुतः प्रस्तुत नाटक स्त्री की प्रतिभा को नेपथ्य से समाज रूपी रंगमंच पर लाने की दिशा में सार्थक प्रयास है। मीराकांत ने इस नाटक में स्त्री जाति के प्रति अपनाई जाने वाली पक्षपातपूर्ण नीति, संकीर्ण दृष्टिकोण , जड़ मानसिकता और शोषक–वृत्ति का ही विरोध नहीं किया है अपितु यह भी सिद्ध किया है कि प्रतिभा एवं विद्वता मात्र पुरूषों की ही बपौती नहीं है। स्त्री की योग्यता का दोहन कर पुरूष समाज द्वारा स्थापित वर्चस्ववाद निरर्थक है। स्त्री जाति की प्रतिभा को नकार कर हाशिये पर रखने की पुरूष–नीति का अस्वीकार है 'नेपथ्य राग'।

संदर्भ ग्रंथ

1. नेपथ्य राग, मीराकांत, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 2004.
2. हिन्दी नाटक, ममता धवन, स्वराज प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 2013.
3. रंग–प्रसंग, जुलाई–सितम्बर, 2007.